परीषह- कर्म प्रकृति के उदय एव परीषह जय के विवक्षा से

मोक्षमार्गस्य नेतार भेत्तार कर्मभूभृताम।

ज्ञातार विश्वतत्वानाम वदे तद्गुणलब्धये॥

CLASS-20

तत्त्वार्थ सूत्र ग्रंथराज में नवम अध्याय में जो संवर के कारणों का वर्णन करते हुए 22 परीषहों का वर्णन किया गया, उन परीषहों का गुणस्थानों में किस तरह से सद्भाव होता है? यह बताया गया। यह प्रकरण पूर्ण होने के बाद वह परीषह किन-किन कर्मों के उदय होते हैं? और किस कर्म के उदय से कौन-कौन से परीषह होते हैं? इसका ज्ञान कराने के लिए आगे के 4 सूत्र आते हैं। पहला तेरहवें number का सूत्र है...

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने॥9.13॥

'ज्ञानावरणे' यानी ज्ञानावरण कर्म के सद्भाव में या उदय में या ज्ञानावरण कर्म के कारण में, प्रज्ञा और अज्ञान यह दोनों परीषह होते हैं। जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है कि प्रज्ञा तो एक बुद्धि के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली विशेष ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होने वाली, एक विशेष ज्ञान की परिणति है और अज्ञान...जिस विषय में ज्ञान नहीं होता है, उसी सम्बन्धी वह अज्ञानता का जो भाव बना रहता है, वह अज्ञान कहलाता है। यह प्रज्ञा और अज्ञान दोनों का सम्बन्ध ज्ञानावरण कर्म के साथ में है।

प्रज्ञा और अज्ञान परीषह की अपेक्षा क्षयोपशम का अर्थ

जो ज्ञानावरण कर्म है, वह जब तक क्षयोपशम भाव के साथ में अपना फल देता है तब तक उस के माध्यम से कुछ ज्ञान प्रकट हो जाता है और कुछ ज्ञान अप्रकट ही रहता है। क्योंकि क्षयोपशम का मतलब ही यह होता है...कुछ आवरण दब गया। उसका उदय अनुभव में नहीं आ रहा है और जो आवरण का अभाव होने पर ज्ञान प्रकट हुआ, उससे कुछ ज्ञान प्रकट हो रहा है। क्षयोपशम में दोनों चीजें एक साथ चलती हैं। ज्ञान का कुछ प्रकट हो जाना और कुछ अप्रकट रहना। जो ज्ञान का प्रकटीकरण हो गया, उससे तो प्रज्ञा पैदा हो जाती है, ज्ञान पैदा हो जाता है। जो ज्ञान प्रकट नहीं हुआ उसके कारण से अज्ञान बना रहता है। यही क्षयोपशम की दशा के कारण से इस ज्ञानावरण कर्म के निमित्त से, यह दो प्रकार की ही परिणतियाँ निरन्तर चलती रहती हैं।

प्रज्ञा तथा अज्ञान परीषह का सद्भाव तथा उसकी परिणति

अब यह प्रज्ञा और अज्ञान, एक ही कर्म के सद्भाव में भी हो सकता है और अन्य अलग-अलग कर्म के सद्भाव में भी हो सकता है। कर्म का मतलब ज्ञानावरण कर्म के जो भेद हैं, उनसे हैं...जैसे मति ज्ञानावरण कर्म है, श्रुत ज्ञानावरण है, अवधि ज्ञानावरण है, मनःपर्यय ज्ञानावरण है और केवल ज्ञानावरण है। कभी-कभी एक ही कर्म के क्षयोपशम में दोनों भाग हो सकते हैं। जैसे श्रुत ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर कुछ श्रुत ज्ञान प्रकट हुआ और जो प्रकट नहीं हुआ, उस सम्बन्धी हमें कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। श्रुतज्ञान भी बहुत बड़ा है, जो श्रुतकेवली तक अपनी यात्रा करता है। 14 पूर्वों का पूर्ण ज्ञान होने पर जो अन्तरंग में श्रुत ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम का लाभ मिलता है, वह श्रुतज्ञान की उत्कृष्टता कहलाती है। उतना ज्ञान जब नहीं होता तो थोड़ा भी ज्ञान होने पर जो भी श्रुत ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से श्रुतज्ञान हुआ है, उसके होने पर भी अन्तरंग में जो ज्ञान की परिणति आती है, उसको प्रज्ञा ही कहा जाता है। एक तो ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम में जो ज्ञान

प्रगट हो गया, वह श्रुतज्ञान का ही प्रज्ञा रूप भी है और जो श्रुत ज्ञान प्रगट नहीं हुआ, वह अज्ञान रूप भी है। एक ही प्रकार के कर्म के क्षयोपशम में भी यह परिणति घटित हो जाती है और भिन्न-भिन्न कर्मों के साथ देखेंगे तो भी समझ में आ जाता है। क्योंकि श्रुत ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम तो है लेकिन अवधि ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम नहीं है। मनःपर्यय ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम नहीं है, तो उस सम्बन्धी ज्ञान नहीं होने के कारण से वह अज्ञान कहलाता है और उस अज्ञान से भी ज्ञानियों को कष्ट होता है, इसलिए उसको अज्ञान परीषह कहा गया है।

प्रज्ञा में मद और अज्ञान में दीनता, परीषह का कारण

यह प्रज्ञा और अज्ञान यह दोनों ही परीषहों का सम्बन्ध ज्ञानावरण कर्म के साथ ही है, यह स्पष्ट हो जाता है। क्योंकि कर्म का क्षयोपशम जब तक रहता है तब तक ज्ञान की पूर्णता नहीं होने के कारण से कुछ ज्ञान जो प्रकट हुआ है...वह प्रज्ञा का मद पैदा करता है और जो ज्ञान प्रकट नहीं हुआ है... वह अज्ञान की दीनता या अज्ञान का एक भाव पैदा करता है। प्रज्ञा और अज्ञान इन दोनों भावों को हम एक ही ज्ञान के साथ भी घटित कर सकते हैं और जो ज्ञान के भेद हैं, उन भेदों के साथ भी घटित कर सकते हैं। इस तरह से यह जानना कि एक ही जीव में प्रज्ञा और अज्ञान यह दोनों एक साथ एक समय पर भी रह सकते हैं। क्योंकि जीव के अन्दर जो ज्ञान हुआ है, वह उसके अन्दर प्रज्ञा पैदा कर देता है और इस प्रज्ञा को यहाँ पर ज्ञानावरण कर्म के उदय में ही कहा गया है।

ज्ञान के धारण करने में 'मैं" का भाव होना मोहनीय कर्म का उदय, मिथ्यात्व का लक्षण

आप यह पूछ सकते हैं कि प्रज्ञा, ज्ञानावरण कर्म के उदय में कैसे हो सकती है? अज्ञान तो समझ में आता है। ज्ञान में जो क्षयोपशम भाव आया है, वह क्षयोपशम भाव भी कर्म की अधीनता के कारण

से है। कर्म पर निर्भर होने के कारण से कर्मजन्य वह क्षयोपशम भाव होने के कारण से, उसे भी ज्ञानावरण कर्म में ही लिया जाता है और अगर आप कहे कि प्रज्ञा होने पर जो प्रज्ञा परीषह होगा तो वह प्रज्ञा परीषह, मोह के कारण से होना चाहिए। क्योंकि जिसके पास में ज्ञान है और वह यह महसूस करे कि मैं ज्ञानी हूँ, मैं श्रुतज्ञान को धारण करने वाला हूँ, मुझे शास्त्रों का बहुत ज्ञान है, तो इस तरह का मोह के कारण से भाव आएगा। ज्ञानावरण कर्म के कारण से कैसे आएगा? यह भाव किस से आता है? मोह के कारण से! यहाँ पर वह भाव मोह के कारण से नहीं लिखा गया। किसके कारण से लिखा गया? यह ज्ञानावरण कर्म के कारण से लिखा गया। आप पहले पढ़ते रहे हो...(छहढाला वगैरह में) **'मैं सुखी-दुःखी, मैं रंक-राव, मेरे गृह गोधन प्रभाव'** मैं-मैं जिस में आ रहा है कि मैं ज्ञानी हूँ कि मैं अज्ञानी हूँ कि मुझे ज्ञान नहीं है, यह सब मोह के कारण से ही तो होता है। जो 'मैं' को इस रूप में मान रहा है। अगर उस रूप में मानेगा तो वह मोह के कारण से होगा, मिथ्यात्व के कारण से होगा। जो यह माने कि मैं अज्ञानी हूँ या मैं ज्ञानी नहीं हूँ, यह दोनों ही प्रकार का भाव अगर वह अपनी मान्यता में आत्मा को न मानकर 'मैं' अपने अहं से ऐसा मानता है और आत्मा को नहीं जानता है, तो उसका वह भाव मिथ्यात्व कहलाता है।

मोह दशा न होने पर भी ज्ञानी होने का भाव ही...प्रज्ञा परीषह

वह भाव तो यहाँ पर ऐसा नहीं होता लेकिन फिर भी ज्ञानियो में मोह देखा जा सकता है, ज्ञानियो में यह भाव तो देखा जा सकता है कि मैं ज्ञानी हूँ। फिर वह भाव किस कारण से हुआ? मोह के कारण से तो नहीं हुआ क्योंकि मोह तो उनका control में है, मोह उनका नष्ट हो चुका है या मोह को भी उन्होंने उदय की दशा को शान्त कर दिया है। मोह तो उनमें में नहीं है लेकिन फिर भी उन में यह भाव आता है। तभी यहाँ पर लिखा गया है कि यह प्रज्ञा परीषह, चारित्रवान मुनियों में भी देखी जाती

है। जो ऋद्धि संपन्न भी हो, चारित्रवान भी हो, ज्ञानावरण के उत्कृष्ट क्षयोपशम के साथ भी हो, उनमें भी यह प्रज्ञा परीषह देखने को मिलेगी। तभी यहाँ पर इसको लिखा गया है क्योंकि परीषहों का सद्भाव तो संयमी में ही कहा गया है, असंयमी में तो होता नहीं , वह तो पहले आपको बता दिया था। आप सब सहन कर ही रहे हो। सहन करते हुए भी संयम तो कुछ नहीं है लेकिन वह सहन जितना हो जाए तो हो जाए। नहीं हो जाए तो उसको जीतने का तो कोई भाव होता नहीं । परीषहो का सम्बन्ध तो संयमी के साथ में है।

संयमी तथा अंसयमी दशा में 'मैं पने' का भाव, समझे परीषह और मिथ्यात्व में भेद

संयमी के लिए ज्ञानवान भी है वह, सम्यग्दर्शन के साथ भी है, तो हम उसे मिथ्यात्व भी नहीं कह सकते। सम्यग्दृष्टि है फिर भी उस में अगर यह भाव आता है कि मैं ज्ञानी हूँ या मुझे इतने ज्ञान का उत्कर्ष प्राप्त है, मुझे ज्ञान का क्षयोपशम प्राप्त है, यह 'मैं पने' का भाव उसमें आता है, तो इस भाव को आप किस से जोड़ेगे? जो आपने पहले पढ़ रखा है कि मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, मैं अज्ञानी हूँ, मैं दीन हूँ, मैं बलवान हूँ, इस भाव से जोड़ेगे तो वह मिथ्यात्व में चला जाएगा और मिथ्यात्व की तो यहाँ कोई बात है ही नहीं है। क्योंकि जो सम्यग्चारित्र को धारण किए हुए है, वे नियम से सम्यग्दृष्टि जीव ही होते है। सम्यग्दृष्टि जीव में सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्चारित्र है फिर उनमें यह प्रज्ञा परीषह हो कैसे रहा है? उन लोगों के लिए विशेष रूप से सुनना है, जिन्हें एक यही जिद बनी रहती है कि 'मैं' का मतलब मिथ्यात्व ही होता है। कोई भी भाव में आपने 'मैं' लगाया तो 'मैं' मतलब मिथ्यात्व ही होता है। ऐसी जिनको जिद रहती है, वह थोड़ा सिद्धान्तों का अध्ययन करें। उनके लिए विशेष रुप से समझो और समझाओ उनको। जहाँ कही पर भी बैठे सुन रहे हो, उनको समझाओ। उनसे प्रश्न करो कि यह भाव दोनो तरीके से हो सकता है...मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, यह मिथ्या दृष्टि

को भी हो सकता है, सम्यग्दृष्टि को भी हो सकता है। अगर ऐसा नहीं होता तब तो फिर परीषह सहन कैसे करता? क्षुधा-तृषा की भी परीषह है तो मैं ही तो भूखा हूँ और कौन भूखा होगा? वेदना मुझको ही तो हो रही है, किसको हो रही है?

अगर आप यूँ कहें कि मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ तो जिसके लिए वेदना हो रही है, तो दुःख तो होगा ही और दुःख में भले ही वह ऊपर से न कहे कि मैं दुःखी हूँ लेकिन दुःखी तो है ही, पीड़ित तो है ही। दुःखी का मतलब क्या? पीड़ित तो है ही। तभी तो उसको दुःख कहा गया। यह बात अलग है कि वह उस दुःख को सहन कर रहा है, कह नहीं रहा। समभाव के द्वारा उस सुख को सहन करके अपने लिए किसी भी तरीके की दीनता नहीं ला रहा लेकिन भीतर से दुःखी तो है। दुःखी होने का मतलब यह नहीं हो गया कि वह मिथ्या दृष्टि हो गया। अगर दुःखी न हो तो फिर अगले दिन क्यो चलने लग जाता फिर आहार के लिए? अगर दुःखी न हो तो फिर क्यो भोजन करने को तैयार हो जाता है? कुछ न कुछ है तो है, आप इसको नकार नहीं सकते। ऊपर-ऊपर से कुछ भी कहो...समता सुख है, सुख है, सुख भी है तो भी वह अगर यूँ कहेगा कि मैं सुखी हूँ तो भी वह 'मैं' आ गया उसमें तो फिर भी वह 'मैं' आ गया तो वह 'मैं' भी फिर उसको मिथ्यादृष्टि बना देगा। यह जो सुख और दुःख है, यह सुख-दुःख का वेदन तो होगा ही क्योंकि जहाँ साता वेदनीय का उदय है, असाता वेदनीय का उदय है, संज्वलन आदि मोह का उदय भी है तो कषाय तो है ही तो उसके साथ में जो मोह का भाव आएगा, वह जो 'मैं' पने का भाव आएगा, वह भाव सम्यग्दृष्टियों को भी आता है। इसलिए छहढाला पढ़ने वालो, पुरानी छहढाला विशेष रूप से पढ़ने वालो, थोड़ा सा संभल कर रहना। एकान्त दृष्टि नहीं बना लेना कि मैं सुखी, मैं दुःखी, इस तरीके का भाव मिथ्यात्व दृष्टि को ही होता है, ऐसा एकान्त नहीं समझ लेना। क्योकि इस भाव में मुनि महाराज भी, सम्यग्दृष्टि भी होते है और बड़े-बड़े चारित्रनिष्ठ मुनि महाराजो में भी यह परीषह कहे गए है।

जाने प्रज्ञा परीषह में 'मैं पने' को प्रत्यभिज्ञान से

परीषह तो तभी होंगे न जब उनमें भाव आएगा। भाव ही नहीं आएगा तो परीषह किसका कहलायेगा? परीषह है लेकिन वह उसको जीत रहे है। सामने भाव आया लेकिन उस भाव में वह बहे नहीं। भाव तो आया लेकिन उस भाव में प्रवृत्ति नहीं की तो इसलिए उस भाव को उन्होंने अपने ज्ञान से जीत लिया, अपने समभाव से जीत लिया तो परीषह हुआ। अन्यथा परीषह कैसे बनेगा? यह भी सीखना है कि जो लिखा गया है, उस सिद्धान्त को हम अब जो ज्ञान में रखते है, उससे थोड़ा सा, आगे-पीछे मिला करके रखे। इसको **प्रत्यभिज्ञान** बोलते है। क्या बोलते है? यह भी ज्ञानावरण कर्म क्षयोपशम पर ही होता है। कौन सा ज्ञान? **प्रत्यभिज्ञान!** जो हम पहले की कोई चीज सीखे हुए है, अभी जो सीख रहे है, उन दोनो को मिला करके कोई हमारे लिए ज्ञान एक नया सा पैदा हो जाए। जैसा यहाँ पैदा हो रहा है कि अब इस प्रकरण में हम आप को कहाँ ले जाकर के किससे जोड़ रहे है? जो आपने पुरानी छहढाला पढ़ रखी है, उस प्रकरण को इस प्रकरण से जोड़ करके आपको समझा रहे है। यह जो चिन्तन होता है, यह प्रत्यभिज्ञान से ही होता है। इस तरह का जो ज्ञान है, यह भी ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से ही आता है।

सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा 'मैं पने' का भाव

अब यह भी प्रज्ञा परीषह में आ सकता है। यह भी क्या है? क्योकि इसके माध्यम से ही आपको कोई नया चिन्तन मिलेगा। जब आपको चिन्तन मिलेगा तो आप कहोगे हमारा बहुत बढ़िया चिन्तन दिया। महाराज को यह सुन करके प्रसन्नता होगी। देखो! हमने चिन्तन दिया, इसी का नाम क्या हो गया? प्रज्ञा परीषह। प्रसन्नता नहीं रखना, इसका नाम प्रज्ञा परीषह। अपने आप में प्रसन्न रहना,

तुम्हारी बाते सुनकर प्रसन्न नहीं होना। वह क्या बनेगा? प्रज्ञा परीषह। इसका मतलब यह नहीं है कि मुनि महाराज को प्रसन्नता नहीं होती कि मुनि महाराज किसी की बात को सुनते नहीं कि मुनि महाराज की कोई प्रशंसा नहीं करता और प्रशंसा सुन कर के भी वे प्रसन्न होते है कि नहीं होते है? वह उनके उस भाव पर निर्भर करता है कि वह बाहरी वस्तुओं में कितना रस ले रहे है? बाहरी बातों में कितना रस ले रहे है? यह परीषह की कमी के कारण से होगा और अगर यह परीषह को जितना हो रहा है तो उन्हें उन चीजों से कोई फर्क नहीं पड़ता है। कोई कुछ भी प्रशंसा करे, कोई कुछ भी कहे, उन्हें पता होता है, यह सब चीजें तो बहुत सामान्य है और इस तरह से सब के लिए हो जाती हैं। इस तरह से सोच कर के ही वह प्रज्ञा परीषह को जीता जाता है।

CLASS-21

प्रज्ञा परीषह को कैसे जीतते हैं?

अपने से बड़े ज्ञानियों के बारे में जान करके, अपने से बड़े गुरुओं के बारे में जान करके, उनकी प्रज्ञा की जो प्रशंसा करेंगे तो उन्हें कभी अपनी प्रज्ञा की कभी भी वह गर्व वाला भाव नहीं आएगा। उसी से वह अपनी प्रज्ञा को जीतते है। कहने का मतलब यह था कि जो आपने सीख रखा है...मैं ज्ञानी हूँ, मैं अज्ञानी हूँ, यह मिथ्यात्व भाव है, यह एकान्त नहीं है। यहाँ पर यह बताया जा रहा है कि प्रज्ञा परीषह में उन्हे भाव आएगा कि मैं प्रज्ञावान हूँ, मैं ज्ञानवान हूँ, तभी लोग मुझे ज्ञानी कह रहे है। इस ज्ञानी पने को सुनकर के भी उनके मन में यह तो आएगा कि मैं ज्ञानी हूँ लेकिन कोई घमण्ड नहीं आएगा, कोई उसके कारण से उन्हें रस नहीं आएगा कि हाँ! यह कह रहे है तो बड़ा अच्छा में कोई बहुत बड़ा हो गया, ऐसा कुछ भाव नहीं आएगा। इसका नाम है- परीषह जय!

सम्यग्दृष्टि में भी होता है 'मैं पने' का भाव

यह जो 'मैं पने' का भाव है, यह भाव केवल मिथ्यात्व के साथ ही नहीं चलता, यह ज्ञान में रखो। यह भाव सम्यग्दर्शन के साथ में भी रहता है। गृहस्थ सम्यग्दृष्टियों को भी होता है...तभी तो भरत चक्रवर्ती कहते है- मैं चक्रवर्ती हूँ। मैं चक्रवर्ती नहीं होता तो फिर चक्र चला कैसे देता, बाहुबली के ऊपर? मैं चक्रवर्ती हूँ, तू मुझे चक्रवर्ती के रूप में मान तो वह चक्रवर्ती के रूप में तो नहीं मान रहा था, भाई के रूप में ही तो मान रहा था। बाहुबली, चक्रवर्ती को चक्रवर्ती नहीं मानना चाह रहा था, बस! तुम चक्रवर्ती होगे अपने घर के होगे। हमें तुम्हारे चक्रवर्ती से क्या करना है? हमेंं तुम्हारे चक्र से क्या करना है? नहीं! मेंरे पास चक्र है, मैं छह खण्ड जीत कर आया हूँ। आए होगे, हमें क्या करना है? तुम हमसे क्या चाह रहे हो कि तुम हमेंं आ कर नमोस्तु कर लो, नमस्कार कर लो? तुम्हें क्यों कर लूँ? भाई के नाते तो करने को तैयार हूँ। अब तुमको चक्रवर्ती के नाते करो...नहीं करूँगा। बस! ठन गई! किस बात पर ठन गई? कि मैं चक्रवर्ती हूँ। यह सम्यग्दृष्टि है भरत, क्षायिक सम्यग्दृष्टि है और बाहुबली भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि है और इसी बात पर ठन गई कि मुझे चक्रवर्ती मान ले। वह कहता है- नहीं! मैं तुझे चक्रवर्ती क्यों मान लूँ? मान भी लूँ तो तू बना रह न, अपने घर मेंं बना रह। मान लूँगा तो फिर यह हो जाएगा कि मेंरे को जो राज्य मिला था वह भी तुम्हारा है। वह कैसे दे दूँ तेरे को? मेंरे पिताजी ने मुझे दे गये है। पिताजी दोनो के एक ही है लेकिन तुझे दे गये वह तू संभाल, मुझे दे गये तो वह मैं संभाल लूँगा। मेंरा क्यों हड़प रहा है? बस! इतनी सी बात थी और लड़ाई हो गई और क्षायिक सम्यग्दृष्टि लड़ गए। मैं चक्रवर्ती हूँ तो नहीं माना तो लड़ गए। लड ले तो यह भी कर ले तैयार हूँ, तू युद्ध कर ले तो छोटा भी तैयार हो गया। युद्ध भी हो गया फिर भी नहीं माना तो भी उसने चक्र छोड़ दिया। यह किस भाव में? 'मैं', मैं चक्रवर्ती हूँ अगर यह 'मैं' भाव नहीं होता तो इतनी नौबत कैसे आती कि अपने भाई के ऊपर कोई चक्र छोड़ दे? अपने घर का, अपना ही सगा भाई जिसके

ऊपर चक्र चलता भी नहीं, वह भी बुद्धि हर गई कि उस पर चक्र नहीं चलता है, फिर भी चक्र चला दिया। यह तो वही बात हो गई गुस्से में आकर के कुछ भी मार दिया और लगा नहीं उसको और वह खिसिया गया। यह भी जो चल रहा है, यह सब क्या है? 'मैं', मैं के बिना तो नहीं होता। यह मैं का भाव एकान्त रूप से मिथ्या दृष्टि में नहीं होता, ऐसा जान कर रखना।

सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के 'मैं पने' के भाव में अन्तर

मिथ्यादृष्टि जो करेगा वह इस भाव से करेगा कि 'मैं' मतलब मैं शरीर ही हूँ। वह शरीर और आत्मा को नहीं जानेगा। लेकिन जो आत्मा शरीर को जान रहा है, वह भी 'मैं' करता है, यह मत भूल जाना। क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी करता है, गृहस्थ भी करता है और मुनियों में भी होगा। जब वह परीषह नहीं जीत पाएँगे तो 'मैं' करेगे और जीत लिया तो 'मैं' की जरूरत नहीं है। लेकिन परीषह होने से या जीत लेने से या नहीं जीत लेने से कोई उनका गुणस्थान नहीं गिर जाएगा कि अगर उन्हे कह दिया कि मैं प्रज्ञावान हूँ या मैं ज्ञानवान हूँ, ऐसा अगर उन्होने महसूस भी कर लिया तो कोई उनका चारित्र नहीं गिर जाएगा। कोई छठवे-सातवें स्थान से नहीं गिर जाएँगे, संयम भी बना रहेगा। यह भी ध्यान रखना क्योंकि पढ़े-लिखे लोग, पढ़ते कम है...धारणाओं में, पूर्व धारणाओं में ज्यादा जीते है। जो उन्होंने सीख लिया है बस! उसी को जो है, सीखते रहते है, उसी को जो सब जगह मिलाते रहते है। परीषह सहन कर लेना या नहीं कर लेने से भी, संयमी का संयम तो बना रहता है। यह जरूर है कि उस परीषह को सहन करने पर जो और कर्म की निर्जरा होती, जो और सवर अधिक होता, वह नहीं होगा। फिर भी उनका वह छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान कहीं नहीं जाएगा, यह भी दिमाग में अच्छे ढंग से fit करके रखना।

ज्ञानावरण कर्म- प्रज्ञा परीषह का कारण

प्रज्ञा परीषह, इसलिए यहाँ पर जो कहा जा रहा है...वह किस के भाव से कहा जा रहा है? अब सम्यग्दृष्टि मुनि महाराज है और यूँ कह लो श्रुत ज्ञानावरण कर्म का अच्छा क्षयोपशम है। अवधि ज्ञानी भी है, मनःपर्यय ज्ञानी भी है और उसके बावजूद भी उनके लिए यह प्रज्ञा परीषह हो सकती है। आचार्य कहते है- किस कर्म के उदय से होगा? अब हम यह तो नहीं कह सकते कि उन्हे मिथ्यात्व कर्म के उदय से **'मैं'** भाव आएगा कि दर्शन मोहनीय के उदय से आएगा, वह तो है ही नहीं वहाँ। किसकी उदय से आएगा? ज्ञानावरण कर्म के उदय से आएगा। यह ज्ञानावरण कर्म भी **'मैं'** भाव उत्पन्न कराता है, यह यहाँ से सिद्ध होता है। ज्ञान अधिक होगा तो वह ज्ञान ही सबसे ज्यादा आत्मा का एक वैभव है। वह ज्ञान ही आत्मा के अन्दर **'मैं'** भाव पैदा कराएगा कि मैं ज्ञानी हूँ और इस भाव में कोई मोहनीय कर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह कान खोलकर अच्छे ढग से दिमाग में बैठा लेना और यही सुनकर के दूसरों को सुनाना। दूर-दूर तक जो लोग सुनते है, उनसे विशेष रूप से कहना है। ज्ञानावरण कर्म के उदय में भी प्रज्ञा परीषह होता है और जो उसके कारण से ज्ञान नहीं हो रहा है, उस संदर्भ को linking देखेंगे तो उससे अज्ञान भी उसी ज्ञानावरण कर्म के कारण से होता है। यह विशेष रूप से यहाँ पर बताने की बात थी। अब प्रज्ञा और अज्ञानी तो यहाँ दो परीषहो के निमित्त बताए गये है, कारण बताए गए। वे क्या बताए गए? ज्ञानावरण कर्म।

अदर्शन और अलाभ परीषह के निमित्त तथा अदर्शन परीषह की विवेचना

आगे की कुछ कर्मो के लिए और बताते है...

दर्शन-मोहान्तराययो-रदर्शना-लाभौ॥9.14॥

दर्शन मोह और अन्तराय यह दो कर्म की विषय में यहाँ बताते है। दर्शनमोह और अन्तराय कर्म के उदय में दर्शन और अलाभ परीषह होते है। क्या समझे? अब यहाँ देखो, क्या लिख रहे है? दर्शन मोहनीय कर्म के उदय मेंं दर्शन परीषह होगा। अब यह भी एक बड़ी चिन्तन की बात है, मथन की बात है कि परीषह हो रहा है- अदर्शन परीषह और अदर्शन परीषह, यह चारित्र धारी मुनियों के लिए ही होगा। परीषह किसको होगे? संयमियो के लिए होगे लेकिन यह परीषह किसके उदय से हो रहा है? दर्शन मोहनीय के उदय से हो रहा है। दर्शन मोहनीय कर्म के उदय मेंं कौन सा परीषह ? अदर्शन परीषह! अदर्शन परीषह में क्या होता है? क्या बताया था? कोई हमको बहुत समय की तपस्या करने के बाद भी ऋद्धियाँ नहीं हो रही है, अवधिज्ञान आदि कुछ प्रकट नहीं हो रहा, कुछ विशेष जो चारित्र का प्रभाव दिखना चाहिए था, वह कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। ऋद्धियाँ तो दूर है, कुछ विद्याएँ भी सिद्ध नहीं हुई अभी तक तो यह सब जो भाव आ रहा है इसका नाम है- अदर्शन परीषह । अब यह किसके कारण से हो रहा है? यहाँ दर्शन मोहनीय लिखा है। अब दर्शन मोहनीय का मतलब क्या?

दर्शन मोहनीय, मिथ्यात्व कर्म होते हुए भी कैसे होता है, अदर्शन परीषह का निमित्त?

अगर आप किसी भी विद्वान के माध्यम से, कभी भी कुछ भी ग्रन्थ पढ़ोगे तो आपको यही पढ़ाया जाएगा…दर्शन मोहनीय अर्थात् मिथ्यात्व कर्म। दर्शन मोहनीय मतलब क्या होता है? मिथ्यात्व कर्म! दर्शन मोहनीय का मतलब मिथ्यात्व ही होता है क्योकि आपको बताया भी जा चुका है…दो ही प्रकार के मोहनीय है- दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय में मिथ्यात्व आ गया और चारित्र मोहनीय में जो भी कषाय है, अनन्तानुबन्धी आदि कषाय चारित्र मोहनीय में आ गये। अब यहाँ पर बताओ कैसे बैठेगा यह? दर्शन मोहनीय के उदय से अर्थात् मिथ्यात्व के उदय से,

अदर्शन परीषह होगा तो फिर वह मुनि महाराज, जिनको अदर्शन परीषह अगर हो गया तो फिर वह तो उसका मतलब यह हो जाएगा...वे सम्यग्दर्शन से ही च्युत हो गए। मिथ्या दृष्टि हो जाएँगे अदर्शन परीषह होने पर। यह प्रश्न ज्ञानियो के लिए छोड़ दे। ऐसा करते है, आज बहुत दिन हो गए कुछ प्रश्न दिया नहीं है। लोग हम से प्रश्न पूछते रहते है। दुनिया में बहुत सारे ज्ञानी लोग है, इस प्रश्न को छोड़ देते है। आज थोड़ा चिन्तन करे, ज्ञानी लोग दूर-दूर तक जो सुन रहे है। महाराष्ट्र में विशेष रूप से ज्ञानी लोग रहते है, स्वाध्यायी लोग ज्यादा होते है। यह सोचे, बताएँ, उत्तर दे, देखते है कौन अच्छा भाव देता है? कौन अच्छा-अच्छा स्वाध्याय करता है? अब यहाँ पर कोई हमें यह बताए कि दर्शन मोहनीय के उदय से, अदर्शन परीषह कैसे सम्भव है? मैं तो कह रहा हूँ कि इस सूत्र में कही कुछ गलती है या मुझे समझ नहीं आ रहा। आप मुझे समझाओ? शायद किसी का message आये। अतः दर्शन मोहनीय का मतलब क्या होता है? मिथ्यात्व। यह सब ग्रन्थों में लिखा रहता है, सब ने पढ़ रखा है। दर्शन मोहनीय अर्थात् मिथ्यात्व! अब क्या करोगे? अब यही के ज्ञानी सब बता देगे। क्या करना पड़ेगा?

'सम्यक्त्व' दर्शन मोहनीय कर्म के भेद का विवेचन, अदर्शन परीषह के परिपेक्ष में

यहाँ हमें दर्शन मोहनीय का मतलब क्या लेना पड़ेगा? यह सोचना पड़ेगा। अगर नहीं सोचेगे और हम पुराना केवल अर्थ करके चलेंगे तो यह सब व्यवस्थाएँ बिगड़ जाएँगी क्योंकि सम्यग्चारित्र के साथ में मिथ्यात्व का उदय कोई भी मायने नहीं रखता और उसकी उसके साथ कोई संगति नहीं बैठती अन्यथा मुनि महाराज के लिए अदर्शन परीषह होते ही क्या हो जाएगा? उनका गुणस्थान पहला हो जाएगा और यह होता नहीं, परीषहो को नहीं सहन करने पर भी गुणस्थान कभी नहीं बदलते। यहाँ पर दर्शन मोहनीय का मतलब हमें यह ध्यान में रखना है कि दर्शन मोहनीय के तीन भेद बताए गए

आठवें अध्याय में ही। अब मैं बताए देता हूँ, क्यों परेशान हो? एक मिथ्यात्व कहलाता है, एक सम्यक् मिथ्यात्व कहलाता है और एक सम्यक्त्व कहलाता है। यहाँ पर मिथ्यात्व और सम्यक्-मिथ्यात्व का तो कोई प्रयोजन ही नहीं है। सम्यग्दर्शन के साथ में भी, सम्यक्त्व के साथ में भी, अब यह दोष लग सकता है, यह परीषह हो सकता है।

सम्यक् प्रकृति के उदय में होने वाले चल-मल-अगाढ़ दोष और अदर्शन परीषह में अन्तर

अब देखो! अभी तक तो आपने यह पढ़ रखा है...सम्यक्त्व के साथ में चल-मल-अगाढ़ दोष ही होते है लेकिन अगर हम इसको देखे तो यह भी समझ में आता है कि सम्यग्दर्शन के साथ में अदर्शन परीषह भी होता है। जो सामान्य से सम्यग्दृष्टि है, उनके लिए तो वह सम्यक् प्रकृति चल-मल-अगाढ़ दोष लगाएगी। लेकिन जो चरित्रवान है, उनके लिए इस तरीके का परीषह भी वह उनके लिए बना सकती है क्योकि सम्यक् प्रकृति के उदय में, क्या लिखा है? गाढ़ता नहीं होना या चलाय चल-मलायपन हो जाना तो चलपन जो है, वह सम्यग्दर्शन के साथ तो होता ही है, सम्यग्दर्शन के भावो में तो होता ही है लेकिन वह सम्यगदर्शन को बनाए रखते हुए भी इस तरह का विचार भी ला सकता है कि अन्य तो अनेक मिथ्या दृष्टि जीव है, उनके लिए तो तरह-तरह की शक्तियाँ हो रही है, तरह-तरह वे चमत्कार दिखा रहे है। तरह-तरह के उनके प्रभाव दिख रहे है और यहाँ हम सम्यग्दृष्टि बन करके, शुद्ध तरीके से चल रहे है और हमारे लिए कोई न ऋद्धियाँ हो रही, न शक्तियाँ हो रही। यह भाव वह सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के comparison के साथ चल रहा है। सम्यग्दृष्टि भी थोड़ा सा मिथ्यात्व की तरफ क्या हो रहा है? चल-मलापन हो रहा है, चलायमान हो रहा है। क्योकि वह मिथ्यात्व को थोड़ा सा देख रहा है, मिथ्यात्व के कारण से अपनी तुलना कर रहा है। यह जो है, उसका भाव यह अदर्शन परीषह कहलाएगा। है वह उसी मिथ्यात्व के कारण से ही,

मिथ्यात्व अर्थात् दर्शन मोहनीय के ही वश के कारण से लेकिन वह मिथ्यात्व के दूसरे लोगों के मिथ्यात्व के निमित्त से, यह भाव उसके अन्दर आ सकता है। यह अदर्शन भाव को समझना बहुत जरूरी है।

CLASS-22

सम्यग्दृष्टि, संयमी, चारित्रधारीओ में कैसे होते है, अदर्शन परीषह के निमित्त?

मिथ्यादृष्टि जीवों के प्रभाव तो दिखते है...जैसे बहुत से बाबा है। किसी बाबा के चर्चे आ गए whatsapp पर, वह बाबा के लिए कोई एक बार कोई भी अपनी समस्या बता दे, वह बाबा अगर उसकी समस्या का उसके लिए कोई समाधान कर दे तो वह पूरा हो जाता है। चल गया, TV पर आ रहा है, सबको पता हो गया। क्या हो गया? सबको उस बाबा की तरफ देखने को आ गया, सबको बाबा विश्वास हो रहा है। जैन लोग भी बाबा की तरफ जा रहे है, वह जैनी आकर के मुनि महाराज को बता रहे है। महाराज! एक ऐसा बाबा आ गया, अब बाबा तो आते ही रहते है। एक ऐसा बाबा आ गया है, जिसका जो है आज बहुत चर्चा हो रही है। बहुत बहुत बहुत, सब लोग उसी को मान रहे है। वहाँ कोई भी जाए, कोई अपनी समस्या बताएं, वह कोई भी उसका निदान बता देता है। उसकी समस्या solve हो जाती है। भले ही वह कह दे, जाओ! समोसा खा जाओ, समोसा खा लेने से समस्या solve हो जाती है। कुछ भी मतलब तो इस तरीके के जब यह देखने में किसी को आए और जिनके सम्यक्त्व में कही कोई थोड़ी सी सम्यक् प्रकृति के भी अनेक प्रकार के भेद होगे न, वह सम्यक् प्रकृति में कही कमजोरी हो तो भी एक क्षण के लिए सोचेगे तो, यह कितने मिथ्या दृष्टि लोग कोई-कोई प्रभाव दिखा रहे है?

अब किसी ने प्रभाव दिखा दिया…कोई मन्दिर है या कोई देवता के नाम से वह दूध पी रहे है या कोई उसको जो है सब कुछ उनके लिए कोई भी दिया जाए, सब कुछ वह समा जाता है। अब पूरी दुनिया में फैला दी चमत्कार किसी बाबा ने तो क्या होगा? जो इस तरीके की कोई भी विसंगतियाँ दिखाई देती है, उनको देखकर के जो सम्यग्दृष्टि है, उनके मन में अगर विचार आता है कि इनको तो यह सब हो रहा है, हमको कुछ क्यों नहीं हो रहा है? अगर यह विचार आए तो यह अदर्शन परीषह कहलाता है। मिथ्यात्व के कारण से ही तो है, इसलिए इसका सम्बन्ध सम्यक्त्व के साथ में है। सम्यक् प्रकृति थोड़ा सा चलायमान तो हुई लेकिन सम्यग्दर्शन को उसने छोड़ा नहीं, यह सम्यक् प्रकृति का काम रहता है। इतना ही जो चलायमान होना, इसी का नाम परीषह को सहन नहीं करना है। यह भी नहीं सोचना, उनको कोई कीमत ही नहीं देना, उनके बारे में सब मालूम होना, यह तो क्या है? मिथ्यादृष्टि तो ऐसा करते ही रहते है, कुछ होने-जाने वाला नहीं है। कुछ भी उसके लिए, उसके मन में उसको लेकर के कोई खेद-खिन्नता नहीं आना तो वह कहलाएगा…परीषह जय और थोड़ा भी अगर मन में उदासीनता गयी...हम भी तो है बहुत बड़े, हमारे लिए तो कोई ऐसा वह निमित्त हो नहीं रहा है और यह मिथ्यादृष्टि अपना प्रभाव दिखाए जा रहा है। यह अदर्शन परीषह हो जाएगा।

अलाभ परीषह , अन्तराय कर्म के उदय से

अलाभ परीषह में क्या होगा? अन्तराय कर्म के यह उदय से यह अलाभ परीषह होता है। कौन सा अलाभ परीषह? अब अन्तराय कर्म तो पाँच प्रकार का है लेकिन मुख्य रूप से यहाँ पर लाभ-अन्तराय कर्म को ही लिया गया है। लाभ-अन्तराय कर्म के विशेष उदय में लाभ नहीं होने देना, इसको बोलते है- अलाभ परीषह। अलाभ भी एक बहुत बड़ा परीषह है। मुनि महाराज किसी

भी तरीके से कहीं जंगल में भी फँस सकते है, कोई ऐसी जगह पर भी पहुँच सकते है, जहाँ कोई श्रावक-श्राविकाएँ न हो तो यह अलाभ परीषह भी हो जाता है।

अलाभ परीषह के स्वरुप का उदाहरण सहित विवेचन

जैसे चन्द्रगुप्त मौर्य की आप कभी वह book पढ़ना तो उसमें चन्द्रगुप्त मौर्य जब वह भद्रबाहु स्वामी के साथ में दीक्षा लेकर के वहाँ श्रवणबेलगोला पहुँचे और वहाँ पर वह कभी आहार के लिए गए तो एक दिन आहार नहीं मिला, दो दिन नहीं मिला। फिर जो है देवताओं ने तरह-तरह के नगर बसाये, यह किया, वह किया तो यह क्या है? अलाभ परीषह ! आहार का लाभ ही नहीं होना। इस तरह के परीषह बड़े-बड़े महापुरुषों को भी हुए है, होते है। किसके कारण से? लाभ-अन्तराय कर्म के उदय से। परीषह तो इसलिए हो गया क्योंकि उस अलाभ को भी सहन करना है। हम तो गए थे आहार के लिए, आहार के लिए कोई पड़गाहन वाला मिला ही नहीं, कोई बस्ती मिली ही नहीं। हमारी इच्छा तो लाभ लेने की थी, हमारी इच्छा तो आहार करने की थी, सामने वाले ने कुछ कोई मिला ही नहीं, कोई आहार का कोई निमित्त ही नहीं मिला। श्रावक ही नहीं मिला तो अब यह लौट करके आना पड़ा। गए तो थे और लौटकर के आ गए तो यह अलाभ कहलाया। भगवान आदिनाथ भी बार-बार जाते थे और कोई विधि नहीं मिलती थी लौट कर आ जाते थे। किस कर्म के उदय से? यह लाभ अन्तराय! इसके उदय में यह अलाभ परीषह होता है।

कौन होता है, अलाभ परीषह जयी?

कर्म के उदय में तो अलाभ परीषह होगा लेकिन उस अलाभ को भी वह बड़ा लाभ समझ कर के गिन लेगे तो वह अलाभ परीषह जय कहलाएगा। अलाभ को भी लाभ समझ कर के गिन

लेगे…अरे! यह भोजन-पानी तो जन्म-जन्म में चलता ही रहा है। अपने को तो लाभ इसका मिला कि चलो! अपनी इच्छा की पूर्ति नहीं होने पर भी हमने उस इच्छा का निरोध कर लिया। यह हमने तप कर लिया, यह हमारे लिए कर्म निर्जरा का कारण हो गया, यह लाभ अच्छा है। यह सोचकर के वह अलाभ परीषह जयी हो जाते है। कर्म के उदय में परीषह होती है लेकिन उस कर्म के उदय के फल में वैसा भाव न करके, वह अपना सम्यग्ज्ञान चारित्र में भाव बनाए रखने के कारण से परीषह जयी बन जाते है, ऐसा कहने का तात्पर्य है। यह दो परीषहो के दो कारण दिए गए है।

चारित्र मोहनीय कर्म के उदय में सात परीषह होते है

आगे कहते है…

चारित्र-मोहेनाग्न्या-रति-स्त्री-निषद्या-क्रोश-याचना-सत्कार-पुरस्काराः ॥9.15॥

यह चारित्र मोहनीय कर्म के उदय में होने वाली 7 परीषह है। कितनी? नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कार-पुरस्कार, यह 1 परीषह है। इस तरह से इन सातो का सम्बन्ध किससे है? चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से है। कही यह भी पढ़ने में आया है कि इनमें से यह जो परीषह है, जैसे नाग्न्य है और अरति और स्त्री को छोड़कर के बाकी जो परीषह है…नाग्न्य, निषद्या वगैरह ये सब जो है, इस तरीके से मान-कषाय रूप जो चारित्र मोहनीय उसके उदय से होती है। चारित्र मोहनीय में कषाय आती है न तो कषाय में क्रोध-मान-माया-लोभ आते है। अब वह सज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ लिए जाएँगे लेकिन उसमें भी मुख्य रुप से सज्वलन की मान कषाय ली जाएगी क्योकि इनका सम्बन्ध मान कषाय से है। नग्न परीषह, मान कषाय के कारण उसको जो है, नग्न परीषह होती है। नग्नता की परीषह होती है अर्थात् वह नग्नता के भाव में रहना नहीं चाहता या

नग्नता के भाव में उसे लज्जा सी आती है। लज्जा का अनुभव करना, यह मान कषाय के कारण से होता है। यह चारित्र मोहनीय कर्म के उदय में इसलिए इस परीषह को कहा गया है। इसी तरीके से अरति परीषह है। अरति नाम की जो नोकषाय है, उसके कारण से होगा और स्त्री परीषह तो जो उसके अन्दर पुरुष वेद का उदय होगा उसके कारण से होगा।

निषद्या परीषह में होती है, मान कषाय की मुख्यता

निषद्या परीषह! यह भी चारित्र मोहनीय के कारण से हो रहा है। अर्थात् निषद्या के माध्यम से वह अपने चारित्र को क्या करता है? मोहित करके मतलब उस चारित्र का पालन, जो स्थिरता के साथ में करना चाहिए, वह नहीं कर पाता तो उसके लिए यहाँ पर निषद्या परीषह लिखा गया है। यानी यह समझना चाहिए कि बैठना और बैठने के कारण से जो स्थिरता का अभाव होता है कि चलो! बहुत बैठ लिए, अब नहीं बैठा जा रहा। एक तो यह बैठा नहीं जा रहा, कोई दर्द हो रहा है वह नहीं है। बैठा ही नहीं जा रहा मतलब आप जैसे कभी सामायिक के लिए बैठे है, ध्यान के लिए बैठे मन ही नहीं लगना यूँ कह लो। बिल्कुल ही जो है उठ जाने का भाव हो जाना। उसको बोलते है- निषद्या परीषह का अभाव। यह जो भाव है, यह भी चारित्र मोहनीय कर्म के उदय की वजह से होता है और इसमें भी मान की मुख्यता बताई गई है। वह मान के कारण से एक जगह पर बहुत देर तक नहीं बैठ सकता है और इस तरह से वह कही न कही, कुछ न कुछ हिलने-डुलने का या कुछ न कुछ अस्थिरता का यह भाव लाएगा तो वह निषद्या परीषह में चारित्र मोहनीय उदय बताया गया।

आक्रोश परीषह में मान कषाय की भूमिका

आक्रोश! यह तो चारित्र मोहनीय के उदय से होता ही है। इसमें भी आक्रोश परीषह हो रहा है। अब इसमें हम मुख्य रूप से क्रोध-कषाय ले सकते है लेकिन इसमें भी मान कहा गया है। क्योकि वह क्रोध भी उत्पन्न होगा तो मान के कारण से होगा। क्योकि किसी ने अगर कुछ कहा और अगर आपके लिए वह आक्रोश आया तो इस बात से आएगा। पहले तो आक्रोश इस बात से आएगा कि मुझको कहा, मुझको! मुझको मतलब? मैं जो एक बहुत बड़ा साधु हूँ, मुनि महाराज हूँ और मुनि के लिए तूने ऐसा कहा! पहले जो है, मान आया उसके बाद में फिर क्रोध आता है। है वस्तुत चारित्र मोहनीय क्रोध के उदय की प्रकृति लेकिन मान के through हो करके आती है।

याचना, सत्कार-पुरस्कार परीषह...मान कषाय के कारण

ऐसे ही आक्रोश के बाद में याचना परीषह जो आदमी स्वाभिमानी होगा, वह याचना नहीं करता। मान के उदय में वह याचना में भी कोई दीनता महसूस नहीं करता, वह याचना भी कर लेता है। वह मान कषाय के कारण से यह याचना नाम का परीषह उसे होता है और सत्कार-पुरस्कार भी मान कषाय के कारण से होता है। उसने मेंरा सत्कार पुरस्कार नहीं किया, उसने मुझे आगे-आगे नहीं रखा, मेरा नाम नहीं बोला, मेंरे गुणगान नहीं किए, इस तरीके का जो परीषह होता है यह भी मान कषाय के कारणों से होता है तो यह भी चारित्र मोहनीय कर्म के उदय में है।

मान कषाय की कमी, बनाती है परीषह जयी

अगर साधक इन चारित्र मोहनीय कर्म की या इस मान कषाय की कमी रखता है, तो उसे कुछ भी यह परीषह नहीं होते है। मतलब अगर मानी बनकर रहता है तो तो कष्ट है और मानी नहीं है, कोई उसके लिए फर्क नहीं पड़ता तो उसके लिए कोई परीषह नहीं होते है तो वह उन परीषहो का जयी

कहलाता है। यह सत्कार-पुरस्कार इस तरीके से यहाँ पर अन्तिम यह सातवाँ जो परीषह है, वह बताया गया और फिर अन्त में...

वेदनीये शेषाः ॥9.16॥

वेदनीय कर्म के उदय में होते है-11 परीषह

वेदनीय कर्म के उदय में शेष जो बचे परीषह है, वह वेदनीय कर्म के उदय में होते जो पहले आप को बता चुके है। 14 में से 3 निकाल दो 11 जो परीषह बचे रहते है, वे सब वेदनीय कर्म के उदय से होते है तो इस तरह से किन कर्मो के उदय में कौन-कौन सी परीषह होते है? इन सब का वर्णन यहाँ पर हो जाता है। वेदनीय कर्म के उदय में वही सब परीषह है...क्षुधा है, पिपासा है, शीत है, उष्ण है, दशमशक है, चर्या है, शय्या है, वध है, रोग है और तृण स्पर्श, मल है...इतने परीषह , यह 11 हो गए। यह सब जो है वेदनीय कर्म के उदय में होते है।

वेदनीय कर्म के उदय में होने वाले परीषह को जीतना, असाता वेदनीय कर्म के उदय को जीतना

यह सब वेदनीय कर्म के उदय में ही आपको भूख-प्यास लगेगी, शीत-उष्ण की बाधा होगी तो असाता वेदनीय होगी तो ठंड में भी बाधा होगी और साता का उदय में होगा तो ठंड में भी कोई बाधा नहीं होगी ऐसा समझ लेना चाहिए। वेदनीय कर्म के उदय में ही आपको मच्छरों से परेशानी होगी, चर्या करने में परेशानी होगी मतलब चलने में वेदना होगी। सोने में वेदना होगी, वध होने पर वेदना होगी, रोग में वेदना होगी, तृण स्पर्श होने पर वेदना होगी और शरीर में मैल आदि लग जाने पर वेदना होगी। यह वेदना, असाता वेदनीय कर्म के उदय से ही हुआ करती है, इसलिए इन परीषहो को जो जीत लेता है, वह असाता-वेदनीय के उदय को भी जीत लेता है। ऐसा इससे सिद्ध हो जाता है।

इस तरह से किन कर्मों के उदय में कौन-कौन से परीषह हुए? इनका वर्णन भी यहाँ पर पूर्ण हो जाता है। इतना ही प्रकरण आज पर्याप्त है।